



सदाचारों में अभिवादन की महत्ता

शोधपत्र-संस्कृत

*डॉ. ओमप्रकाश पारीक

भारतीय संस्कृति में सदाचारों की प्रतिष्ठा धर्म के अन्तर्गत की गयी है जो कि मानव जीवन का पहला पुरुषार्थ है। धर्मशास्त्रीय मतानुसार शिष्टतापूर्ण कार्य व्यवहार ही सदाचार कहा जाता है। मानव के लिये आचार की प्राथमिकता को देखते हुए ही स्मृतिकारों ने 'आचारः परमो धर्मः' कह कर सदाचार की महत्ता को उपलक्षित किया है। इस अवधारणा के पीछे स्मृतिकारों का उद्देश्य मानवीय आचरण को ही धर्म के उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करना रहा है। आचार या सदाचार से ही मानव देवत्व की प्राप्ति करता है, तथा आचारहीन होने पर वह पशुत्व या असुरत्व को प्राप्त करता है। अतः एक स्थान पर यह भी निर्देश धर्मविज्ञों ने किया है कि आचरण से हीन होने पर देवता भी उसको पवित्र नहीं करते :-

“आचारहीनं न पुनन्ति देवाः।”

सदाचार एवं तन्मूलक व्यवहार को वंशपरम्परागत रूप में प्रतिष्ठापित करने की भी चेष्टा धर्मशास्त्रकारों की रही है, अतः यह भी निर्देश प्राप्त होता है, कि पिता पितामह प्रपितामह आदि पूर्वजों ने जिस सन्मार्ग का आचरण किया है वही सन्मार्ग पुत्र के लिये भी श्रेष्ठ होता है। किसी स्मृतिकार ने लिखा है :-

“येनास्य पितरो याता येन याता पितामहाः।

येन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन् न दुष्यति॥”¹

अर्थात् जिस सदाचार के रास्ते से पिता पितामह आदि चल कर उन्नति को प्राप्त हुये हैं उसे ही सन्मार्ग मानना चाहिये तथा उस सन्मार्ग पर चलता हुआ मनुष्य कभी भी दोष का भागी नहीं बनता। महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपने प्रसिद्ध स्मृतिग्रंथ में इस मत को भिन्न प्रकार से प्रतिष्ठापित किया है :-

“यस्मिन् देशे तु आचारो व्यवहारः कुलास्थितिः।

तथैव परिपाक्योऽसौ यथा वंशमुपागतः॥”²

अर्थात् जिस देश में जैसी परम्परायें कुलों में विद्यमान हों उनके अनुकूल किया जाने वाला व्यवहार ही वहाँ के देशवासियों के लिए सदाचार होता है। अतः जिस प्रकार कुल के ज्येष्ठ या अन्य लोग उसका परिपालन कर रहे हों वैसे ही स्वयं को भी उसका अनुसरण करना चाहिये, यही धर्म है।

यही प्रसिद्ध धर्मशास्त्रकार मनु ने भी व्यावहारिक दृष्टि से आचार की महत्ता स्वीकार की है तथा आचार से प्राप्त होने वाले लाभों का भी उल्लेख किया है। दोषों के निवारक के रूप में

भी उन्होंने सदाचार की उपादेयता स्वीकार की है। इस संदर्भ में मनु का वचन यहाँ उल्लेखनीय है :-

“आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः।

आचाराद् धनमक्षय्य माचारो हन्त्यलक्षणम्॥”³

अर्थात् आचार या सदाचार के पालन से दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है यह प्रथम लाभ है। इच्छित सन्तान की प्राप्ति होती है यह दूसरा लाभ है। अक्षय धन की प्राप्ति होती है यह तीसरा लाभ है तथा स्वभाव में गूढ रूप से विद्यमान दोषों का विनाश होता है यह चौथा लाभ है। इस प्रकार चार प्रकार के लाभ मनु ने बतलाये हैं। सदाचार का पालन करने के साथ-साथ उसके प्रति श्रद्धा का होना भी अत्यावश्यक है। श्रद्धा का महत्त्व तो भगवान् कृष्ण ने भी 'श्रद्धावान लभते ज्ञानम्' कह कर भगवद् गीता में बतला दिया है अतः किसी भी ज्ञान की प्राप्ति के निमित्त श्रद्धा का होना आवश्यक है। यहाँ भी सदाचार मूलक ज्ञान के प्रति नैष्ठिकभाव की प्राप्ति हेतु श्रद्धा की अपेक्षा स्वीकार की गयी है, अतः मनु ने लिखा है :-

“सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान् नरः।

प्रदधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति॥”⁴

अर्थात् जो पुरुष सब लक्षणों (गुणों) से हीन होने पर भी सदाचारी एवं श्रद्धालु होता है तथा दूसरे के दोषों को नहीं कहता वह सौ वर्ष तक जीवन जीने का लाभ प्राप्त करता है। सदाचार मानव जीवन के सभी क्षेत्रों से जुड़े हुये हैं। नैष्ठिक सदाचारों में अभिवादन को प्रथम स्थान पर गिना गया है, जो विद्या के अधिकार हैं तथा जो विद्या प्राप्त करने में तत्पर हैं दोनों के लिये ही अभिवादन अनिवार्य है। अभिवादन विद्यावान् पुरुष का प्रतीक है। अभिवादन से प्राणों की उर्ध्ववृत्ति का नियंत्रण होता है। इसके कारण बुद्धि स्थैर्य को प्राप्त करती है तथा ज्ञान के प्रति उसमें तत्परता का भाव उदित होता है। अतः मनु लिखते हैं :-

“लौकिकं वैदिकं तथाध्यात्मिक मेव च।

आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादेत्॥”⁵

अर्थात् जिससे लौकिक, वैदिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान को सीखे, उसे पहले प्रणाम करना चाहिये। मनु का आशय यह है कि जो ज्ञान में ज्येष्ठ हो या ज्ञान प्रदाता हो, उनके समक्ष प्रणत होने पर ही वास्तविक शिक्षा लाभ संभव है। अहंभाव के रहने

* प्रवक्ता संस्कृत बा. शो. राम. राज. स्नातकोत्तर कला महाविद्यालय, अलवर

पर ज्ञान प्राप्ति असम्भव है अतः अभिवादन या प्रणाम की अपनी उपयोगिता है। गुरुजनों के आगमन पर शिष्य को आसन से उठने एवं अभिवादन करने का विधान किया गया है। इससे शिष्य की हानि नहीं होती। जो शिष्य ज्येष्ठों को अभिवादन नहीं करते या उनके आने पर बैठे रहते हैं, उनकी प्राणशक्ति क्रमशः क्षीणता को प्राप्त करने के कारण वे दीर्घायुष्य के लाभ से वंचित हो जाते हैं अतः मनु ने निर्देश किया है :-

“शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत।

शय्यासनस्थश्चैवैनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ॥

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति।

प्रत्युत्थानाभिवदाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते ॥⁶

अर्थात् जिस शय्या और आसन पर गुरुजन बैठते हों, उस पर न बैठे तथा यदि स्वयं अपनी शय्या या आसन पर हों और गुरुजन आ जायें, तो उन्हें उठकर प्रणाम करना चाहिये। बड़ों के आने पर छोटों के प्राण ऊपर को उच्छ्वसित होते हैं, इसलिये खड़े होकर प्रणाम करने से वे प्राण फिर अपने स्थान पर आ जाते हैं, जिससे दीर्घायुष्य की हानि नहीं होती। मनु ने अभिवादन के लाभों का भी उल्लेख किया है:-

“अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।

चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम् ॥”⁷

अर्थात् वृद्धजनों की सेवा में रत रहने वाला एवं नित्य वृद्धजनों एवं ज्येष्ठों को प्रणाम करने वाले व्यक्ति के आयु विद्या यश एवं बल ये चार पदार्थ निरन्तर वृद्धि को प्राप्त करते रहते हैं। अभिवादन का प्रथम लाभ आयुष्य की प्राप्ति है। जीवन-यात्रा की परिपूर्णा हेतु प्राणी को आयुष्य अत्यावश्यक है। यश का लाभ स्वभाविक प्रतिष्ठा हेतु वांछनीय है अतः कहा भी है- ‘कीर्तिर्यस्य स जीवति’। बल चाहे शारीरिक हो या बौद्धिक दोनों ही प्राणी के लिये परस्पर सापेक्ष रूप में आवश्यक होते हैं।

अभिवादन के लाभ बताने के पश्चात् मनु ने अभिवादन की विधि का भी उल्लेख किया है जो निम्न प्रकार है :-

“अभिवादात्परं विप्रो ज्यायांसमभिवादयन्।

असौ नामाहमस्मीति स्वं नाम परिकीर्तयेत् ॥

नामधेयस्य ये केचिद् अभिवादं न जानते।

तान्प्राज्ञोऽहमिति ब्रूयात्स्त्रियः सर्वास्तथैव च ॥

भोः शब्दः कीर्तयेदन्ते स्वस्थ नाम्नोऽभिवादाने।

नाम्नां स्वरूपनविहि भो भावः ऋषिभिः स्मृतः ॥”⁸

अर्थात् ब्राह्मण को एवं गुरुजनों को अभिवादन (प्रणाम)

करने के बाद अपना नाम भी बता देना चाहिए (जैसा अभिवादये अमुकशर्माऽहभोः)। अभिवादन करने में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ यदि कोई वृद्ध न जानते हों तो उन्हें (मैं प्रणाम करता हूँ) ऐसा कहकर अभिवादन करें। स्त्रियों के लिये भी अभिवादन का यही नियम है। अभिवादन करने में अपने नाम के अन्त में भोः शब्द कहना चाहिये। प्रणाम किये जाने वाले के नाम के स्वरूप का द्योतक भोः शब्द है, ऐसा ऋषियों ने कहा है। वे प्रत्यभिवादन को आवश्यक मानते हैं। प्रत्यभिवादन के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है :-

“आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादाने।

अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः ॥

यो न वेत्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम्।

नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥”⁹

अर्थात् ब्राह्मण प्रणाम किये जाने पर ‘आयुष्मान् भव’ (तुम दीर्घायु हो), ‘सौम्य भव’ (चरित्रवान् बनो) इत्यादि प्रत्यभिवादन के रूप में कहें।

प्रत्यभिवादन की अपरिहार्यता बतलाने के बाद मनु ने अभिवादन के संदर्भ में कतिपय अन्य निर्देश भी किये हैं जो निम्न प्रकार हैं :-

“शरीरं चैव वाचं च बुद्धीन्द्रिय मनांसि च।

नियम्य प्राञ्जलि स्तिष्ठेद् इक्षिमाणो गुरोर्मुखम् ॥”¹⁰

अर्थात् शरीर, वाणी, बुद्धि, इन्द्रिय एवं मन को नियंत्रण में रखकर हाथ जोड़कर गुरु के मुख को देखता हुआ स्थिर रहे। (गुरु से विद्याग्रहण करते समय अभिवादन करने का यह नियम समझना चाहिये)।

“गुरुवत्प्रतिपूज्याः स्युः सवर्णा गुरुयोषितः।

असवर्णास्तु संपूज्याः प्रत्युत्थानाभिवाद नैः ॥”¹¹

अर्थात् यदि गुरु की पत्नी सवर्णा हो तो गुरु के समान ही पूजनीया होती है। यदि असवर्णा हो तो केवल उठकर एवं प्रणाम करके उनका सम्मान करना चाहिये।

मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूरथ पितृस्वसा।

संपूज्या गुरुपत्नीवत्समास्ता गुरुभार्यया ॥

भ्रातृभार्योपसंग्राह्या सवर्णाहन्यहन्यपि।

विप्रोष्य तूपसंग्राह्या ज्ञातिसम्बन्धयोषितः ॥¹²

अर्थात् मौसी, मामी, सास, बुआ ये भी गुरु पत्नी के तुल्य ही पूज्य हैं अतः इनको भी उसी नियम से अभिवादन द्वारा सम्मान प्रदान करना चाहिये। भाई की पत्नी यदि सवर्णा हो तो उसे भी नित्य प्रणाम करना चाहिये।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. वशिष्ठ स्मृति, 3/92 2. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/343 3. मनुस्मृति, 4/156 4. मनुस्मृति, 4/158 5. मनुस्मृति, 2/117 6. मनुस्मृति, 2/119-120 7. मनुस्मृति, 2/121 8. मनुस्मृति, 2/122-124 9. मनुस्मृति, 2/125-126 10. मनुस्मृति, 2/192 11. मनुस्मृति 12. मनुस्मृति